International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 380-383

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 380-383
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-07-2020
Accepted: 29-08-2020

डा0 नूतन कुमारी
नवरतन चौक, पूर्णिया सिटी
जिला–पूर्णिया, बिहार, भारत।

Corresponding Author:
डा0 नूतन कुमारी
नवरतन चौक, पूर्णिया सिटी
जिला–पूर्णिया, बिहार, भारत।

श्रीमद्भगवद्गीता एवं विदुरनीति का तुलनात्मक अध्ययन

डा0 नूतन कुमारी

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2020.v6.i5g.1194

प्रस्तावना

मानव जीवन सभी जीवों में श्रेष्ठ माना जाता है। अन्य किसी भी जीव में जन्म लेकर ईश्वर की भक्ति सम्भव नहीं है। उचित और अनुचित का ज्ञान मानव से इतर जीव नहीं कर सकता। क्या मनुष्य को आगे बढ़ने में मदद करेगा तथा क्या उसे पतन की ओर ले जाएगा।

यह मानव बुद्धि ही निर्धारित करती है। विवेकशीलता मानव मात्र की पूँजी है। श्रीमद्भगवद्गीता और विदुरनीति में इसी का उल्लेख है। महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण मोहग्रसित अर्जुन को प्रदान करते हैं। कुरूक्षेत्र के मैदान में अर्जुन अपने प्रति पक्ष के सैनिकों में मामओं, चाचाओं, ता ओं, दादाओं, गुरूओं को देखकर मोहग्रस्त हो जाते हैं। वे युद्ध से विमुख हो जाते हैं। उन्हें युद्ध उचित नहीं लगता। अपने ही स्वजनों और बन्धु बान्धवों को मार कर राज्य करना उचित नहीं समझते हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। अपनों को मारकर राज्य भोगने से क्या लाभ । राज्य तो अपने सगे–संबंधियों को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। मोहग्रस्ति अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा –

श्लोकार्थ

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोन्तिष्ठ परन्तप ।।

अर्जुन को मोहग्रस्त देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें श्रीमद्भगभद्गीता का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि य समय मोहग्रस्त होने का नहीं हैं। सामने शत्रु हो और आप पीछे हट जाएँ तो

यह कायरता होगी। क्षत्रियों को कायरता शोभा नहीं देती । ये सभी तो पहले ही विवेकशून्य हो चुके हैं इन्हें मारने में अनीति या अधर्म क्या? जिन्हें स्वयं उचित अनुचित का ज्ञान नहीं हैं वे युद्ध क्या करेंगे । वे तो पहले ही पराजित हो चुके है। इसलिए उचित यही है कि सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय सबको समान समझकर उठो और युद्ध में जुट जाओ ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्वस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में श्रीकृष्ण को अर्जुन का उपदेशक बनाकर उचित अनुचित का विवेचन किया है। हम सभी लोभ, मोह, मद, मत्सर इच्छा इत्यादि में फॅसकर यह भूल जाते है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं सिर्फ अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहते हैं। इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम युद्ध करो । तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है फल की चिन्ता मत करो । तुम कर्म नहीं करने के अधिकारी मत बनो । तुम जिस न्याय के पथ पर चले हो उस पथ में कितनी भी बाधाएँ क्यों न आ जाएँ तुम्हें अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहिए ।

कर्म येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूमाते संड.ोडस्त्वकर्मणि ।।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि सफलता और असफलता यह तो परिणाम है अतः पहले कर्म की प्रधानता होती है और तब कर्म के अनुरूप फल जो भी प्राप्त हो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कुछ लोग सफलता पाने के लिए उचित अनुचित का ज्ञान भूल जाते हैं। कुछ भाग्य को ही सबकुछ मानकर कर्म से विमुख हो जाते हैं । यह उचित नहीं है।

सफलता पाना तब आसान हो जाता है जब हम कुछ सोपानों को अपना कर उसे अपनी दिनचर्या में शामिल करें जैसे – 1. लक्ष्य का निर्धारण 2. संसाधनों का सदुपयोग 3. सतत् जिज्ञासा 4. संवाद कौशल 5. नेतृत्व करने की योग्ता 6. प्रशासनिक कौशल 7. क्षमा, करूणा एवं सहयोग की भावना 8. वित्तीय संसाधनों का सुनियोजन, कार्य योजना एवं नीतियाँ बनाने की कला विकसित करना 9. सकारात्मक सोच अर्थात् जो अपने लिए हानिप्रद या दुखद है वह आचरण दूसरों के लिए भी नहीं किया जाय 10. आत्मविश्वास और 11. नियत समय पर नियमित रूप से नैतिकतापूर्ण कार्य करना ।
इन सोपानों को अपनाकर कठिन से कठिन कार्य को सरतापूर्वक पूरा कर सफलता प्राप्त कर सकता है।

विवेचना

महात्माओं का ऐसा विचार है कि सुध बुध खोया हुआ व्यक्ति अनिश्चय एवं अनिर्वाय की स्थिति में कभी वह कर बैठता है जो कथमपि नहीं करना चाहिए । ऐसा कार्य आत्मघात या पलायनवाद कहलाता है। प्रगतिशील ज्ञान चिन्तन से मुख मोड़कर अपनी दिशा पतन की ओर मोड़ लेना समझा जाता है। आत्मविश्वास की कमी कल्पित भय तथा भविष्य के प्रति निराशा ये तीनों ही स्थितियाँ मनुष्य के संक्लप बल को क्षीण करती हैं और समाज में दुर्बल नागरिकों को जन्म देती है। ऐसी दुर्बलता से उबरने के लिए उपनिषद् गीता, विदुरनीति, नीतिशतक चा ाक्य नीति इत्यादि महान ग्रन्थों के नीति वचनों को दैनिक जीवन के आचर ा में अपनाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।
यह भौतिक शरीर नश्वर है। दैहिक लीला इहलोक में समाप्त हो जाती है। परन्तु सत्कर्म का फल हमारे इहलोक के साथ–साथ परलोक को भी सजाता और सँवारता है। भौतिक शरीर तथा इसके सुक्ष्म तत्व सृष्टि एवं जीव के लिए अत्यधिक उपयोगी बन जाते हैं, यही नीति ज्ञान धर्म की सफलता और सार्थकता है। अध्यात्म तो पुरी तरह से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विनिर्मित हुआ है जिससे मनुष्य आन्तरिक दृष्टि से भावनात्मक स्तर पर अपनी उत्कृष्टता सुरक्षित रखने एवं बढ़ा सकने में समर्थ बना रहे। वह बाह्य दृष्टि से कार्य–कलापो को आदर्शवादिता भरे, संयमित, मार्यादित तथा जन कल्याण के लिए गतिविधियाँ अपनाए रखने की तत्परता बरते। पूजा उपासना, सत्संग, कथा, वार्ता, तीर्थ व्रत आदि के प्रयोग से व्यक्ति अन्तर्मन प्रफुल्लित और विकसित करना है तथा व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाता है। मानवीय व्यक्तित्व का निर्माण मनुष्य को अपनी कलाकारिता, सूझबूझ, एकाग्रता और ऐसे पराक्रम का प्रतिफल है जो संसार के अन्य उपार्जनों की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण अधिक प्रयत्न साध्य है।
उपासना यदि भक्तियोग है तो साधना–ज्ञानयोग एवं अराधना कर्मयोग है । श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग ज्ञानयोग और कर्मयोग की त्रिवेणी प्रावाहित होती है। इसी की प्रतिष्ठा विदुरनीति में भी हुई है । ज्ञानान्ध घृतराष्ट्र को महात्मा विदुर कहते हैं, सद्भावना, सद्विचार, सत्प्रवृत्तियों को आत्मसात कर मनुष्य ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। साधक साधन और साध्य के समुचित समन्वय पर सिद्धि की सार्थकता आश्रित होती है। पंकिल तथा निम्नगामी मार्ग पर चलकर हम ँचे स्थान तक कैसे पहुँच सकते है? अगर पहुँच भी गए तो उसकी क्या सार्थकता है? इसकी परि ाति तो कहीं पतन के दलदल में होगी । क्रोध से क्रोध,
घृणा से घृणा बुराई से बुराई तथा हिंसा से हिंसा को नही मिटाया जा सकता। महामुनि व्यास, भगवान कृष्ण एवं महात्मा विदुर से लेकर तुलसी, सूर, कबीर, रहीम, महात्मा गाँधी, संत परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, सन्त मेंही इत्यादि अनेक मनिषियों एवं समाज सुधारकों का अनुभव जनित यही सन्देश रहा है।
आज समाज, राज्य, राष्ट्र एवं विश्व तथा अन्तरिक्ष स्तर तक बिगड़ते अनुशासन तन्त्र और संरक्षणात्मक स्वरूप को व्यवस्थित रखने के लिए हमारे पूर्वज चिन्तकों के सुनिश्चित उपदेशों, नीतियों तथा निर्देशों का बार–बार अवलोकन करने के उद्देश्य से ऐसे महान ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता अति आवश्यक है। ये हम मानवजाति के पथ प्रदर्शक है। महाभारत शान्ति पर्व अ0 63 श्लोक 28 से 29 भंडारकर संस्करण में भीष्म पितामह ने राजधर्म की श्रेष्ठता बताते हुए कहा है कि–
''यदि द डनीति नष्ट हो जाय तो तीन वेद रसातल काो चले जाएँगे । तीनों वेदों के नष्ट होने से समाज में प्रचलित सारे धर्म नष्ट होने पर समाज के सारे नैतिक मूल्य नष्ट–भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए राजधर्म तथा नैतिक मूल्यों को पतन से बचाने के लिए किसी भी नीति विषयक ग्रन्थों का अध्ययन, मनन, चिन्तन और विश्लेषण तथा उसके उपरान्त व्यवहार में लाना आवश्यक है।
प्रथमतः ''पाँच पाण्डव'' (कृष्णावतार–3, राजकमल पेपर वैंक्स) के विद्वान लेखक कन्हैयालाल मा ाकिलाल मुंशी जी के शब्दों में,
''श्रीकृष्ण बुद्धिमान और वीर थे, स्नेहालु और स्नेभाजन थे, दुरदर्शी होकर भी वर्तमान समय के अनुकूल आचरण करते थे उन्हें ऋषियों जैसे अनासकित प्राप्त थी। फिर भी उनमें पूर्ण मानवता थी वे कूटनीतिज्ञ थे, ऋषितुल्य थे, कर्मठ थे। उनका व्यक्तित्व अद्भुत था इसलिए अर्जुन के आदर ाीय प्रिय सखा होकर भी पक्षपात या मोह के वशीभूत होकर भी महाभारत युद्ध में कुरूक्षेत्र के मैदान में मोहग्रस्त अर्जुन को अनुपम ज्ञान प्रदान किया। युद्ध के लिए उसे जिस तरह तैयार किया उस तरह उससे पूर्व कभी नहीं किया
श्रीकृष्ण ने कहा युद्ध हमारा स्वाभाविक लक्ष्य नहीं होना चाहिए किन्तु अपने अधिकार कर्त्तव्य तथा मानवता की रक्षा के लिए हमें आरंभिक काल से ही समर्थ बनना चाहिए जिससे कि अनिवार्यता की स्थिति में हम सार्थक भूमिका निभा सकें।
द्वितीयतः महाभारत (गीता प्रेस गोरखपुर–छठा स ।स्क्श्रण–2043 सं.) आदि पर्व अध्याय 204 प्ज्ञ्0–584–85 के अनुसार पा डव–विवाह से चिन्तित धृतराष्ट्र एवं उनका पुत्र दुर्योधन पा डवों को पराक्रम से दबाने के लिए कर्ण के सहयोग से कुमन्त्रणा कर रहा था । पितामह भीष्म उन्हें आधा राज्य देकर शान्ति पूर्वक रहने की सलाह दे रहे थे और द्रोणाचार्य उपहार भेजकर पाण्डवों को बुलाने तथा पितामह की बात मान लेने के लिए उनका समर्थन कर रहे थे और कर्ण द्वारा विरोध करने पर उसे डाँट रहे थे। उसी समय विदुर जी, भीष्म तथा द्रो ाचार्य समर्थन करते हुए युद्ध तथा अशान्ति को टालने के लिए बड़े ही साफ शब्दों में महाराज धृतराष्ट्र को कहने लगे । महात्मा विदुर कभी भी किसी भी हालत में दूयर्थी संशयपू र्ा बातें नहीं करते थे चाहे श्रोता प्रसन्न हों या दुखीं, अपने हो या पराए । परन्तु वे युद्ध के द्वारा श्रीकृष्ा की तरह बात मनवाने की कुशलता उनमें नहीं थी। उनकी प्रवृति वैसी नहीं थी।
अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण और कौरव पा डवों के चाचा महात्मा विदुर अवस्था, क्षमता, योग्यता तथा मानसिकता की दृष्टि से भिन्न–भिन्न व्यक्तित्व के रूप में महाभारत में प्रकट किए गए हैं और महर्षि व्यास का आनेवाली पीढ़ियों के लिए यह संदेश हो सकता है कि पहले विदुर जी की तरह पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण के समान व्यक्तित्वों का समर्थन करते हुए स्वष्टवादिता के साथ असत्य, अनीति और अशांतिपूर्ण हिंसा का विरोध किया जाए यदि तब भी बात नहीं बनती है तो श्रीकृष्ण की तरह उसका प्रतिकार करते .... हुए बिनष्ट कर न्याय
एवं शान्ति की स्थापना की जाय, जिसका जो हक है उसे वह अवश्य दिलाया जाय । महाभारत की अध्याय क्रम में पहले अदि पर्व में फिर पाँचवे उद्योग पर्व में महामना विदुर
जी क्रमशः दुर्योधन, कण्र और विशेषरूप से धृतराष्ट्र को अपने ज्ञान–विज्ञान से न्याय नीतियुक्त मार्ग पर चलने का उपदेश प्रदान करते है तथा पा डवों को उनका अधिकार दिलाना चाहते है जिससे शान्ति पूर्वक कौरव–पाण्डवों का और भारत–भूमि का विकास अवश्यम्भावी था किन्तु
ऐसा नहीं होने की स्थिति में छठे भीष्म पर्व में श्री कृष्ण अपने फुफुरे भाई अर्जुन को गीताज्ञान प्रदान करते हुए सच का विराट एवं व्यापक रूप दिखलाते हैं और कर्त्तव्य पथ पर निष्पथ–निर्मोह भाव से चलने को तैयार करते है। विदुरजी यदि समर्थों हितैषियों

का समर्थन करते हुए ज्ञान उपदेश आवतायी दुर्योधन के प्रेरक मोहग्रस्त पिता अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को प्रदान करते हैं तो श्रीकृष्ण दोनों पक्षों कौरव पाण्डवों को सनुलित रखने का प्रयास करते हुए अनतः अर्जुन जो उनके सखा थे तथा अनुज की तरह थे को पूर्ण समर्थ बनाते हुए अन्याय एवं अन्यायियों से लड़कर विजयी होने के लिए प्रेरित करते हैं।

विदुरनीति के प्रवक्ता महात्मा विदुर कुरूक्षेत्र के उन दृश्यों तथा श्री कृष्णार्जुन–सवांद की तीक्ष्णता को दिव्यदृष्टि युक्त संजय के द्वारा समझने वाले उद्वेग और शोक से दुखी महाराज धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण से थोड़ा भिन्न शैली में कहते है ।

महामना विदुरजी धृतराष्ट्र से मधुर एवं मोह रहित शब्दों में कहते हैं कि पाण्डवों के प्रति भी कोमलता व्यवहार किया जाय । इस क्रम में विदुर जी महाराज धृतराष्ट्र को इहलोक और परलोक में प्रतिष्ठत होने के ज्ञान की बात बतलाते हैं सच्ची न्यायप्रियता के लिए सुधन्वा विरोचन संवाद की पौराणिक कथा का सहारा लेकर सत्य तथा कल्याण मयी बुद्धि से अपनों की रक्षा एवं अर्थसिद्धि के उपाय बतलाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । विदुरनीति में विदुर वचन –

"षडिमान पुरूषो जह्याद भिन्नां नावमिवा वि । अप्रवक्तारामाचार्य मनधीयान मृत्विजम् ।। अरक्षितारं राजानं भार्यां च अप्रियवादिनीम् । ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्।।

अर्थात्– हे राजन ! सदुपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोधारण न करनेवाले स्त्री, गाँव में रहने की इच्छावाले ग्वाले तथा वन में रहने की इच्छावाले नाई इन छः को उसी प्रकार छोड़ देते है ।
पुनः करते हैं –

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितों मोदमानः ।
न देवानां नापि च मनुष्याणां भविव्यासि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ।।
अनुक्रोशादानृशंस्याद् योडसौ धर्मभृतां वरः ।
गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति ।।

अर्थात्–तात् पा डवों को उनका न्यायोचिंत राज्य भाग देकर आप अपने पुत्रों के साथ सुख से रहें। इस प्रकार आप देवता या मनुष्यों की आलोचना का पात्र नहीं रहेंगे ।

हे राजेन्द्र! धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया सौम्यभावि तथा आप की आज्ञाकारिता के कारण बहुत कष्ट सह रहा है। अतः उनके साथ कोमलता का वर्ताव करते हुए उन्हें उनका राज्य भाग देने की कृपा करें।

धृतराष्ट्र को बार–बार समझाते हुए महामना विदुर कहते हैं कि हे राजन! सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों के साथ कोमलता का व्यवहार का विशेष महत्व है। आाप अपने पुत्र कौरव और पा डवों के साथ समान रूप से सहदयता का व्यवहार करें । इससे इस संसार में महान यशस्वी होकर मरने के बाद भी स्वर्गवासी बनेंगे । इस लोक में जबतक मनुष्य की पावन कीर्ति का गान होता रहता है तब तक वह स्वर्गलोक का आनन्द भोगता रहता है।

यहाँ प्रसंगवश महात्मा विदुर न्यायपराय ाता के पक्ष में एक दिव्य कन्या केशिनी गरीब ब्राह्मण सुधन्वा–विरोचन और उसके पिता भक्त प्रसाद की पौरा िक संवाद कथा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में सांख्ययोग कर्म योग, ज्ञान योग, ध्यान योग, मन का निग्रह योगभ्रष्ट पुरूषों की गति, आसुरी भावों दुर्जनों तथा कटुवचनों की निन्दा और निषिद्व पदार्थों के कारण के रूप में अनैतिकता का आगमन वर्ण्य विषय है अतः इसे दूर करने का उपाय भी अर्जुन को श्रीकृष्ण बताते हैं। पुनः शरीर की अनित्यता तथा आत्मा की अमरता का वर्णन कभी करते हैं–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः ।। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

विदुरनीति में विदुर जी स्पष्टण्रूप से धृतराष्ट्र को बताते हैं कि दुर्बल, लोभी कामी, चोर और अपने से अधिक बलवान शत्रु वाले चैन से नहीं रह सकते ।

गीता का अर्जुन तथा विदुरनीति के धृतराष्ट्र दोनों ही अपने विपक्षियों से लड़ना नहीं चाह रहे है । धृतराष्ट्र राज्यलोभ और पुत्रमोह से ग्रसित होकर पाण्डवों को उसका अधिकार नहीं दे पा रहे हैं इसलिए युद्ध की आशंका से बेचैन है।

धृतराष्ट्र पुत्र के अनष्टि की आशंका से परेषान है। अर्जुन अपने आदरधीय पितामह गुरूद्रोण आदि श्रद्वेयजनों तथा निकट सम्बन्धियों के महाविनाष की संभावना से डरे हुए मोह के वशीभूत होकर अपना अधिकार भी छोड़कर जीने के लिए युद्ध भूमि से भागना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण और विदुरजी दोनों विष्वस्त तथा आदर ीय उपदेषक अपने–अपने पात्रों को बुद्धिमान पुरूषों के लक्षण, मुढ़ की पहचान निष्काम भाव से कर्म करने की प्रेर ाा कर्त्ता पर ही कर्मदोष के फल का दायित्व श्रमा–धर्म, विद्या अहिंसा आदि मानवीय गुणों का समर्थन, कटुवचन का बहिष्कार, दुर्जनों का निरादर, सत्कर्म एवं सद्‌गुणों का निरूपण तथा सफल महापुरषों के अनुकरणीय आचरणों के बारे में विशद् ज्ञान का भ डार हैं।

विदुरनीति एवं गीता मं सुयश तथा सुख प्राप्ति, मृत्यु की परिभाषा, विद्यार्थी के शत्रु, गुण और दोष, गुणातीत पुरूष के लक्षण, धर्म अत्याज्य धर्म–कर्म तथा संतोष की महत्ता, त्याग का विषय जन्म–मृत्यु तथा भय से बचने के उपाय, योग शक्ति के फल, प्रारब्ध प्रबल और भगवान श्रीकृष्ण के शब्दो में कर्म तथा वर्ण विभाजन का सम्यिक वर्णन किया गया है।

महात्मा विदुर जी की दृष्टि क्रमशः अपने अनुज मित्र तथा अग्रज को प्रयोजन परि ााम तथा उन्नति की दृष्टि से न्यायोचित कार्य करने की प्रेरणा देते हैं । श्रीकृष्ण सत् रज तथा तम तीनो गुणों के बारे में बताते हुए कर्मयोग पर बल देते है। महामना विदुर जी धृतराष्ट्र को पुत्र के मोह में पड़ा हुआ देखकर लाभ–हानि का अन्तर समझाते हुए हानिपूर्ण कार्य नहीं करने के लिए निवेदन करते हैं। वे कहते हैं कि सुपाच्य और हितकर आहार ग्रहण करने की शिक्षा के साथ–साथ नीतियुक्त शासन व्यव्स्था का महत्व भी समझाते हैं महात्मा विदुर एक अच्छे राज अन्याय से नाश, धर्म से विकास, सदाचार की श्रेष्ठता विभिन्न प्रकार के पुरूषों की पहचान तथा इन्द्रियों के स्वच्छन्द होने के परिणाम बताते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण प्रभुसम्मित और कान्तासम्मित वचनों के मिश्र ायुक्त शैली में कर्मयोगी तथा सांख्ययोगी के लक्षण, भिन्न–भिन्न प्रकार के यज्ञ एवं उनके फल, विज्ञान सहित ज्ञान के विषय ज्ञान योग आत्मोद्धार के लिए भगवत्प्राप्त करते हुए प्रभावशाली दिखाई पड़ते हैं।

विदुरनीति में महात्मा विदुर कल्याणमयी बुद्धि से रक्षा एवं अर्थसिद्धि, निष्कपटता, दुर्गुणों का त्याग, चार प्रकार के उत्तम कर्म लक्ष्मी आगमन तथ रक्षा और स्वर्गलोक के दर्षन का उपदेश देते है। श्री कृष्ण देवोपासना के विषय शुक्ल एवं कृष्णमार्ग के विषय ब्रह्म अध्यात्म और कर्मादि के विषय में अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर तथा ध्यानयोग का वर्णन करते हैं। धृति, शम, सत्य, धमानुशरण, प्रिय–अप्रिय विचार, कटु वचनों के निषेध, सहनषक्ति, निवृत्ति से मुक्ति, कृतध्न निन्दा, हर्ष शोक त्याज्य, इन्द्रिय विषय परायणता से बुद्धि का हास तथा शान्ति सुख के उपाय आदि के लिए विभिन्न प्रकार के सुझाव दिए है।

दोनों ग्रन्थरत्नों में निर्दिष्ट कर्म परिणाम, पुरूष की श्रेष्ठता, प ित एवं संकटग्रस्त, यज्ञ, तप दान के पात्र एवं भेदं, मूर्ख तथा दुष्टों के वर्ताव भगवत्प्राप्त पुरूषों के लक्षण, नीच पुरूषों के लक्षण एवं उनकी त्याज्यता, इन्द्रिय संतुलन, वीर पुरूषों के व्रत अनिर्वेद तथा क्षमा की महिमा के साथ–साथ निष्काम भगवद्भक्ति की महिमा का वर्णन किया गया है।

आज हम जिस व्यस्त एवं जटिल जीवन में जी रहे हैं हमारा विवेक एवं विचार एक मार्गदर्शक की तलाश करता है जो हमें समुचित

मार्ग की ओर अग्रसर कर सके । ऐसे माहौल में श्रीमद्भगवद्गीता एवं विदुरनीति ऐसे उपनिषद हैं जो हमे सही मार्ग पर अग्रसर कर सकें । ये हमारे जीवन को सँवार कर परलोक का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं।

''श्रीमद्भगवद्गीता और विदुरनीति का तुलनात्मक अध्ययन'' की

सन्दर्भ

1. ऋक्सूक्त संग्रह – व्याख्याकार– डा0–हरिदत्त शास्त्री एवं डा0 कृ ा कुमार– प्रकाशक – साहित्य भ डार, सुभाष बाजार मेरठ–1974 ई0 में प्रकाषित ।
2. वाल्मीकी रामायण – गीता प्रेस गोरखपुर, स.।0–2045 में प्रकाषित ।
3. संस्कृत महाभारत प्रथम खण्ड – महर्षि वेदव्यास गीता प्रेस गोरखपुर सं0– 2045 में प्रकाषित ।
4. संस्कृत महाभारत तृतीय खण्ड–महर्षि वेदव्यास–गीताप्रेस गोरखरपुर स.।0–2065 में प्रकाशित ।
5. मनुस्मृति – चौखम्भा संस्कृत सिरिज प्रकाशन, वाराणसी – 179 ई0 । 6. याज्ञावल्क्यस्मृति – निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई 1981 में प्रकाषित ।
6. संस्कृत काव्य में नीतितत्व – डा0 गंगाधर भट्ट – वाफना प्रकाशन, जयपुर, 1971–72 ई0 ।
7. व्याख्यान वल्लरी – श्री लाल बहादुर शास्त्री – केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम् अनुसंधान, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली ।
8. संस्कृत–हिन्दी, शब्दकोष – वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल बनारसी दास प्रकाषन दिल्ली–7 पटना–4 वारा ासी –1 1977 ई0।
9. विदुनीति – गीता प्रेस गोरखपुर– स.।0–2058 ।
10. श्रीमद्भगवद्गीता–गीता प्रेस गोरखपुर–मोतीलाल जासान स.।0–2031 संस्कर ा